

उर्दू, हिन्दी और हिन्दुस्तानी (1934)

देश में ऐसे आदमियों की संख्या कम नहीं है जो उर्दू और हिन्दी की अलग अलग और स्वतन्त्र उन्नति और विकास के मार्ग में बाधक नहीं होना चाहते। उन्होंने यह मान लिया है कि आरम्भ में इन दोनों के स्वरूपों में चाहे जो कुछ एकता और समानता रही हो, लेकिन फिर भी इस समय दोनों की दोनों जिस रास्ते पर जा रही हैं, उसे देखते हुए इन दोनों में मेल और एकता होना असम्भव ही है। प्रत्येक भाषा की एक प्राकृतिक प्रवृत्ति होती है। उर्दू का फ़ारसी और अरबी से स्वाभाविक सम्बन्ध है। और हिन्दी का संस्कृत तथा प्राकृत के साथ उसी प्रकार का सम्बन्ध है। उनकी यह प्रवृत्ति हम किसी शक्ति से रोक नहीं सकते। फिर इन दोनों को आपस में मिलाने का प्रयत्न करके हम क्यों व्यर्थ इन दोनों को हानि पहुँचावें?

यदि उर्दू और हिन्दी दोनों अपने आपको अपने जन्म स्थान और प्रचार क्षेत्र तक ही परिमित रखें तो हमें इनकी प्राकृतिक वृद्धि और विकास के सम्बन्ध में कोई आपत्ति न हो। बँगला, मराठी, गुजराती, तमिल, तेलगु और कन्नड आदि प्रान्तीय भाषाओं के सम्बन्ध में हमें किसी प्रकार की चिन्ता नहीं है। उन्हें अधिकार है कि वे अपने अन्दर चाहे जितनी संस्कृत, अरबी या लैटिन आदि भरती चले। उन भाषाओं के लेखक आदि स्वयं ही इस बात का निर्णय कर सकते हैं; परन्तु उर्दू और हिन्दी की बात इन सबसे अलग है। यहाँ तो दोनों ही भारतवर्ष की राष्ट्रीय भाषा कहलाने का दावा करती हैं। परन्तु वे अपने व्यक्तिगत रूप में राष्ट्रीय आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर सकीं और इसीलिए संयुक्त रूप में स्वयं ही उनका संयोग और मेल आरम्भ हो गया। और दोनों का वह सम्मिलित स्वरूप उत्पन्न हो गया जिसे हम बहुत ठीक तौर पर हिन्दुस्तानी ज़बान कहते हैं। वास्तविक बात तो यह है कि भारतवर्ष की राष्ट्रीय भाषा न तो वह उर्दू ही हो सकती है जो अरबी और फ़ारसी के अप्रचलित तथा अपरिचित शब्दों के भार से लदी रहती है और न वह हिन्दी ही हो सकती है जो संस्कृत के कठिन शब्दों से लदी हुई होती है। यदि इन दोनों भाषाओं के पक्षपाती और समर्थक आमने सामने खड़े होकर अपनी साहित्यिक भाषाओं में बात करें तो शायद एक दूसरे का कुछ भी मतलब न समझ सकें। हमारी राष्ट्रीय भाषा तो वही हो सकती है जिसका आधार सर्वसामान्य बोधगम्यता हो—जिसे सब लोग सहज में समझ सकें। वह इस बात की क्यों परवाह करने लगी कि अमुक शब्द इसलिए छोड़ दिया जाना चाहिए कि वह फ़ारसी, अरबी अथवा संस्कृत का है? वह तो केवल यह मानदंड अपने सामने रखती है कि जनसाधारण यह शब्द समझ सकते हैं या नहीं? और जनसाधारण में हिन्दू, मुसलमान, पंजाबी, बंगाली, महाराष्ट्रीय और गुजराती सभी सम्मिलित हैं। यदि कोई शब्द या मुहावरा या पारिभाषिक शब्द जनसाधारण में प्रचलित है तो फिर वह इस बात की परवाह नहीं करती कि वह कहाँ से निकला है और कहाँ से आया है। और यही हिन्दुस्तानी है। और जिस प्रकार अँगरेजों की भाषा अँगरेजी, जापान की जापानी, ईरान की ईरानी और चीन की चीनी है, उसी प्रकार हिन्दुस्तान की राष्ट्रीय भाषा को इसी तौर पर हिन्दुस्तानी कहना न केवल उचित ही नहीं, बल्कि आवश्यक भी है। और अगर इस देश को हिन्दुस्तान न कह कर केवल हिन्द कहें तो इसकी भाषा को हिंदी कह सकते हैं। लेकिन यहाँ की भाषा को उर्दू तो किसी प्रकार कहा ही नहीं जा सकता, जब तक हम हिन्दुस्तान को उर्दूस्तान न कहने लगे, जो अब किसी प्रकार सम्भव ही नहीं है। प्राचीन काल के लोग यहाँ की भाषा को हिंदी ही कहते थे।